पंजाब के संगीत–जीवी वर्ग एवं जातिया

डा. अलंकार सिंह
असिस्टैंट प्रोफ़ैसर, संगीत विभाग
पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला

राजदीप कलेट
पी–एच.डी. शोधार्थी,
पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला

पंजाब राज्य भारतवर्ष में अपनी संस्कृति एवं कला द्वारा अन्य भागों से अग्रगण्य रहा है। पा¡च दरियाओं की भूमि होने के कारण भारतीय सभ्यता की मूल जड़ें पंजाब में ही पनपी एवं विकसित हुईं। इतिहास पर ग़ौर करें तो हमें यह ज्ञात होता है कि भारत एक धर्मनिर्पेक्ष देश रहा है। आर्य लोग भारत में 2000 पू. ई. के भीतर आने शुरू हुए थे।[1] उन्होंने यहा¡ के मूल निवासियों द्राविड़ों को दूर जंगलों, पहाड़ों में भगा दिया तथा कई लोगों को ज़बरदस्ती अपनी अधीनता भी स्वीकार करवाई। ये "वही मिश्रित जातिया¡ हैं, जो आज कल पेशावर, का'तकार, कारीगर, मज़दूर एवं बरवाले ¼पहरेदार½ के रूप में हिन्दू गाव में पाई जाती हैं।[2] जो लोग पहाड़ों एवं जंगलों में चले गए, वे फल इत्यादि वस्तुए¡ खा कर अपना जीवन बसर करने लगे परन्तु जब बाढ़, सूखा तथा प्राकृतिक आपदाओं ने इन्हें दूसरी जगहों पर जाने के लिए विवश किया, तो इन्होंने अपनी सुरक्षा हेतु कबीलों में रहना शुरू कर दिया। धीरे–धीरे इन कबीलों ने अपने पेशे के आधार पर अपनी एक विशे'ा पहचान बनाई तथा उसी व्यवसाय से ही विभिन्न जातिया¡ अस्तित्व में आईं। हर एक कबीला तथा वर्ग विशे'ा व्यवसाय के आधार पर सामाजिक जन–जीवन के साथ जुड़ गया। इन जातियों ने अपने जन्म–जात हुनर को व्यवसाय के रूप में प्राप्त कर अपनी पहचान को उसी कला रूप के ज़रिए पेश किया। मीरासी, बाज़ीगर, सुनार, तरखान, चमार इत्यादि शब्द व्यवसाय के रूप में ही उत्पन्न हुए हैं।

समाज काजातिगत विभाजन

भारतीय समाज प्राचीन समय से ही श्रेणीगत जाति के अंर्तगत विभाजित रहा है। इस विभाजन का आधार प्राचीन समय में विभिन्न लोगों द्वारा किये जाने वाले कार्य थे। इस सामाजिक विभाजन के पीछे व्यवसाय एक अहम भूमिका अदा करता था। प्राचीन समय में जातिगत वर्ग चार भागों में विभाजित थेः ब्राãण, क्षत्रीय, वैश्य एवं शूद्र। जो बुद्धिमान थे और दिमागी शक्ति ज़्यादा रखते थे, वे *ब्राह्मण*कहलाए। इनका कार्य धार्मिक कार्य करना तथा आम जनता को शिक्षा प्रदान करना था। बाहू–बल की प्रबलता रखने वाला, जो जनता की रखवाली का सूचक बना, उसे *क्षत्रीय* कहा जाने लगा। *वैश्य,* जिन के हिस्से खेती–बाड़ी और व्यापार करना आया, यह तीसरे दर्जे की श्रेणी में आए। साधारण लोगों की सेवा करने वाले और दिमागी प्रफुल्लता के पक्ष से नीचे दर्जे के लोगों को *शूद्र* कहा जाने लगा। इन्हें अछूत समझा जाता था। धीरे–धीरे यह वर्ग विभाजन इतना ज़्यादा कठोर हो गया कि ''ब्राह्मण का पुत्र चाहे उस में ब्राह्मण का कोई गुण हो अथवा न हो, ब्राãण ही कहा जाने लगा तथा शूद्र का पुत्र कितना भी गुण–वान हो, शूद्र ही रह गया।[3] समय के परिवर्तन से इन वर्णों में से ही बहुत सी जातियों का जन्म हुआ जो एक दूसरे से व्यवसाय के रूप में अलग हो गईं। ऐसी जातियों में तरखान, सुनार, घुमार, जट्ट, लुहार, छींबे, नाई, तेली, चमार, मीरासी इत्यादि पेशा सूचक जातिया¡ हैं। ''इन बहुत से समुहों में से, जिन्हें जातिया¡ कहा गया है, बहुत सारे समूहों के नाम, उन के मुख्य व्यवसाय एवं उन के पेशों के नाम से लिए गए अनुभव होते हैं और आज भी बहुत से समूह इन कार्यों व पेशों को धारण कर के बैठे हुए हैं।[4]उपरोक्त जातियों के नाम भी

शायद इसी तरह प्रचार में आए होंगे। इस तरह किसी भी श्रेणी को निम्न तथा उच्च वर्ग में दिखाने का श्रेय व्यवसाय पर ही निर्भर होता है। संगीत कला एवं अन्य ललित कलाओं का भी जातिगत रूप में निरंतर विकास हुआ है। ऐसी जातियों एवं वर्गों में बाज़ीगर, मीरासी, ढाडी, भराई, भट्ट, चारण, कथक, मुतरिब इत्यादि सम्मिलित हैं।

पंजाब के संगीत जीवी वर्ग

पंजाब एक सरहदी प्रदेश होने के कारण शुरूआत से ही हमलों की लपेट में आता रहा है। इन हमलों ने पंजाबी सभ्यता एवं संस्कृति को बहुत प्रभावित किया, जिसका अत्याधिक प्रभाव हमारी कलाओं पर पड़ा। साधारण जनता बाहरी विदेशियों के हमलों से अपने बचाव के लिए ही जूझती रही और कलाओं के प्रति ज़्यादा सुचेत ना रह सकी। पंजाबियों का मुख्य व्यवयास खेती–बाड़ी होने के कारण इनका ज़्यादा ध्यान ज़मीन सम्पUा को बढ़ाने में ही लगा रहा और संगीत जैसी कोमल कला इनके लिए सिर्फ़ एक रूचि मात्र ही बन कर रह गई परंतु इस कार्य को निम्न श्रेणी मीरासियों ने संभाला, जो सिर्फ अपने जजमान ¼उच्च वगो±½ पर ही निर्भर थी। मीरासियों तथा संगीत से जुड़े पंजाब के अन्य वगो± संबंधी चर्चा निम्नलिखित हैः

- **मीरासी**

मीरासी पंजाब का एक ऐसा जाति–समूह है, जो संगीत को समर्पित है। इन्हें गाने–बजाने वाले लोग भी कहा जाता है। इनके बारे में जानने से पहले मीरासी शब्द का अर्थ जान लेना अति आवश्यक है।

''एच.ए. रोज़ मरासी शब्द को अरबी शब्द मीरास के समानांतर मानते हैं।[5] भाई कान्ह् सिंह नाभा मीरासी के बारे में लिखते हैं ''मीरास संभालने वाला, एक मुसलमान जाति, जो भट्टों के तुल्य है और अपने जजमानों की वंशावली ¼मूरिषों की पीढ़ियां½ पढ़ती है, भाई मरदाना इसी जाति से श्री गुरू नानक देव का सिक्ख हुआ।[6] शमशेर सिंह अशोक मीरासी का शाब्दिक अर्थ ''मीरास, मालकी या विरासत के हक्क का दावेदार'[7] मानते हैं। कृपाल कज़ाक एवं जगराज धौला मीरासी का अर्थ 'मृत्यु की रास' से मानते हैं, भाव कि किसी ज़मींदार एवं जागीरदार की मृत्यु हो जाने के पश्चात् मीरासी को उस के वस्त्र, चढ़ावे के पैसे एवं गेहू¡ लाग के रूप में दिए जाते थे। 'मृत्यु की रास' को अपनाने हेतु ही इन का सम्बन्ध इस से जुड़ जाता है।

मीरासी समुदाय के बुज़ुर्गों के अनुसार मीरासी शब्द मुख एवं रसी के सुमेल से बना है, जिसका अर्थ 'मुख के रसीले' होने से है।

उपरोक्त विचार–विमर्श को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि यह सभी धारणाए¡ अपनी जगह पर सही हो सकती हैं, क्योंकि एक मीरासी का कार्य लागी ¼ओलगी½ बनकर ज़मींदार के वंशावलीनामे को रसीले मुख से गाना भी है। इसीलिए इस का भाव मीरास से लेना ज़्यादा सही है, जो विरासत में आई संगीत रूपी संपत्ति को संभालता है और उसका रसीले मुख से गायन करता है। इस जाति को अन्य विभिन्न नामों से भी जाना जाता है जैसे–''डूम–मिरासी, मीर–आलम, मीर, मरासी, मीरज़ादे, बाबे के, दादे के, मरदाने के, बाबा, दादा इत्यादि।[8] ये अपने आप को 'मीर–आलम' कहे जाने पर गौरवान्वित महसूस करते हैं। हरियाणा में इन्हें डूम कहा जाता है। मीरासियों को नीच दिखाने के लिए डूम शब्द का प्रयोग किया जाता है। ''मीरासियों को घृणा की भावना से 'डूम' कहा जाता है। मीरासी भी जब लड़ते–झगड़ते हैं तो एक–दूसरे को नीचा दिखाने के लिए डूम शब्द का प्रयोग करते हैं। यहीं से पता चलता है कि यह जाति समूह डूम कबीले से ही निकला है।[9] एलबरूनी अनुसार, ''इन का कार्य गा¡व की सफ़ाई एवं दूसरे

गंदे कार्य को करना था।[10] एलबरूनी की टिप्पणी पर आश्चर्य होता है कि इतना बड़ा विद्वान होकर भी वह सफ़ाई जैसे काम को गंदा कह रहा है। इस विचारधारा से प्रतीत होता है कि उस समय उन के ऊपर या तो कोई राजनैतिक दबाव होगा या फिर वह भी अन्य सामाजिक प्राणियों की तरह निम्न वर्गों के प्रति अपना नज़रिया ऐसा रखते होंगे।

मीरासी समुदाय पंजाब में ऐसा जाति समूह है, जो निम्न होते हुए भी जाटों, ज़मींदारों के भीतर रहा है। उच्च श्रेणियों का लागी बन कर यह उनके कार्यक्रमों, त्योहारों, जन्म से मृत्यु तक के विभिन्न अवसरों पर भागीदार रहा है। यद्यपि उच्च वर्णों ने इस जाति समूह को एक हाशिए पर ही रखा। ये गा¡व में एक जजमान के साथ जुड़े होते थे और इनकी आने वाली पीढ़िया¡ भी उसी जजमान पर निर्भर होती थीं। ये जजमान का वंशावलीनामा ज़ुबानी याद रख कर उसका गायन करते थे। ये उनका यश एवं गुणगान गा कर बताते थे। इसके फलस्वरूप इन्हें सूखा भोजन जैसे गेंहू, चावल, चीनी, तेल, वस्त्र इत्यादि पदार्थ जीवन व्यतीत करने के लिए दिए जाते थे। इसे ही 'लाग' कहा जाता था। यह वह समय था, जब लोग एक–दूसरे पर आश्रित थे और अपने फ़र्ज़ एवं आस्था को कुदरत की देन समझ कर स्वीकार कर लेते थे। तब ज़्यादातर लोग रोज़ी–रोटी पर ही आधारित थे परन्तु हरी क्राँति एवं विश्वीकरण ने इस कला जीवी जाति को हाशियाकृत कटघरे में खड़ा कर दिया। मण्डी ने तो इस वर्ग के सामाजिक जीवन को बुरी तरह से प्रभावित किया। स्वर की समझ रखने वाले मीरासी वर्ग के यह सुरीले गायक एवं वादक मण्डी में प्रचलित बेतुके अथो± वाले गीतों को अपनी गायकी में सम्मिलित ना कर सके और सदैव गरीबी में ही अपनी ज़िन्दगी बसर करते रहे। इन्होंने सदैव स्वर एवं ताल को ही अहमियत दी और अपनी विरासती गायकी को आज–कल की पॉपुलर गायकी के अनुकूल नहीं बदलने दिया परन्तु जिन्होंने समय की नब्ज़ को पहचानते हुए प्रचलित गायकी में अपनी विरासती एवं सुरीली गायकी का सुमेल कर नए अंदाज़ में पेश किया, वे कलाकार सफल भी हुए। ऐसे गायकों में सरदूल सिकंदर, फ़िरोज़ खान, मघ्घर अली, सुरिंदर खान, मास्टर सलीम, माशा अली इत्यादि कलाकारों के नाम वर्णित है।

- **डूम**

''संस्कृत में डम, डोम एवं डोंब, यह तीन शब्द संकीर्ण जाति की एक नीच जाति के लिए आए हैं। डूम हिन्दू तथा मुस्लमान जाति में पाए जाते हैं। श्री गुरू नानक देव जी का प्रिय सिक्ख भाई मरदाना इसी जाति में से पैदा हुआ था।[11] इन्हें आदर की दृष्टि से नहीं देखा जाता था। इसलिए समाज से इनकी दूरी निश्चित होती थी। जी.एस. गुरिए कहते हैं, ''पंजाब में डूम नाम का एक और समूह है जिसे मीरासी कहते हैं। यह लोग पेशे से भांड अथवा गवैये एवं कुर्सीनामा लिखने वाले हैं। कुछ जाट परिवार उन्हें इस उ±श्य के लिए ही नौकर रखते हैं। वे गायक होने का दावा करते हैं और उनमें से लगभग सभी ही मुसलमान हैं।[12] एच.ए. रोज़ ''डूम को कंचन कह कर परिभा ित करता है, जो किन्नरों के साथ तबला बजाते थे और यह लड़कियां अक्सर ही मीरासी होती थीं।[13] इस तरह हमें पता चलता है कि डूम कुर्सीनामा लिखने वाले गायक थे, जो तबला एवं सारंगी का वादन भी किया करते थे। मीरासीयों में डूमों को सब से निम्न माना जाता है और इन्हें ग्रंथों में अछूत भी कहा गया है। अन्य विद्वान मीरासी तथा डूम को एक ही समझते दिखाई देते हैं, जैसे जी.एस. गुरिए एवं भाई कान्ह् सिंह नाभा, जिन्होंने भाई मरदाना को डूम अथवा मीरासी दोनों समूहों में रखकर यह बताया है कि यह दोनों एक ही जाति के अलग नाम हैं। इनके बारे में एक तथ्य प्रचलित हैः ''गुणियन के सागर हैं, जात के उजागर हैं, भीखारी बादशाहों के, प्रभों के मीरासी, सिंघों के रबाबी, कव्वाल पीरज़ादों के, सभी हमें जानत हैं, डूम मालजादों के।[14]

- **भांड**

यह मीरासी जाति में से ही एक श्रेणी है। लोगों को ह¡साना इन का मुख्य कार्य है। नकल की पेशकारी के लिए दो व्यक्तियों का होना अनिवार्य है। यह अपनी आकर्षक बातचीत से संक्षेप रूप में एक कहानी को पेश करते हैं तथा अंतिम चरण पर जाकर लोगों के हास्य उत्पन्न करने वाले पात्र बन जाते हैं। ''भांडों की यह परम्परा दो हासरसी पात्रों रंगा एवं बिगला से आरम्भ हुई मानी जाती है।''[15] रंगा जो बातचीत की एक कड़ी जोड़ता है एवं बिगला उस कड़ी में रंगे को चमोटा मार कर एक आक'ार्क अथवा मनोरंजक अंदाज़ में जवाब देता है। यह कहानी की चर्म सीमा होती है, जिससे बहुत हास्य उत्पन्न होता है।

भांडों द्वारा की जाने वाली क्रिया को नकलें भी कहा जाता है। इसके परिप्रेक्ष्य में गुरदियाल सिंह कहते हैं, ''नकल रंगा एवं बिगला के पात्रों द्वारा पेश की जाने वाली बहुत संयमी, सरल बात–चीत में से आई चतुर अथवा कारज भरपूर कहानी है, जो शब्द–अर्थों के उतार–चढ़ाव पर चमोटे की पटाकी के टकराने से उत्पन्न होती है, अपितु दोनों के प्रश्न उत्तरों के विरोधात्मिकता से बोलने के अंदाज़ पर जलौ में आकर बिगले के बहुत ही अकस्माक उत्तर के साथ पटाका चलने हेतु खत्म हो जाती है।[16]

पंजाब के अन्य भांड परिवार इस पेशे को छोड़ चुके हैं। उन्होंने अन्य पेशों को अपना लिया है। बहुत से भांड मीरासी अच्छे गायक भी रहे हैं। इनमें से बरकत सिद्धू, पूरन शाहकोटी, मास्टर सलीम, सायदा बेगम, ज्योति–नूरां इत्यादि कलाकारों के नाम उल्लेखनीय हैं।

भांडों की एक और विधा नकलिए के नाम से भी जानी जाती है। नकलिए जाति नहीं बलकि एक पेशा है। महान कोष में नकलिए को ''नकल करने वाला, किसी और की तरह शक्ल बनाने वाला ''सवांगी'' कहा गया है।[17] नकलिया शब्द नकल से बना है। इस में तीन प्रस्तुतियों को एक साथ पेश किया जाता है।

''यह नकलिए स्वर, ताल, गीत–संगीत, नृत्य एवं अदायगी ¼अदाकारी½ में माहिर होते हैं। जो कलाकार नकल से सम्बन्धित सभी कार्य करते हैं, उन्हें ''पंच पटिया'' कहा जाता है। भाव यह है कि वे संगीत ¼हारमोनियम, ढोलक वादन½, गायकी, नृत्य, संवाद एवं अदाकारी पा¡चों में ही निपुण होते है।[18] छोटी नकलों को 'टिच्चर' ¼45 से 7 मिनट½ एंव लम्बी नकलों को 'पटड़ियां' ¼30 मिन्ट से 1 घण्टे से अधिक तक½ कहा गया।

''लम्बी नकलों में हीर–रांझा, सोहणी–महिवाल, कीमा–मलकी, सस्सी–पुन्नूं, लैला–मजनूं, पूर्ण भक्त, रूप बसंत, राजा हरीशचंन्द्र, पृथ्वी सिंह एवं किरणमई, दुल्ला भट्टी आदि ड'ामे किए जाते थे।[19]

नकलिए पुरूष से महिला बन कर अजीबो–गरीब हरकतें करते दिखाई देते हैं, शायद इसी कारणवश इन्हें निम्न श्रेणी तक सीमित रखा हुआ है। अन्यथा देखा जाए तो पंजाबी समाज में नृत्य को गायन एवं वादन से कम ही प्रमाणिकता प्राप्त हुई है। यह वर्ग विशेष संगीत के साथ जुड़ा रहा है परन्तु इन्हें पंजाबी समाज में नीच एवं कंजरों/नचारों के बराबर समझा जाता रहा है।

पंजाबी हास्य–व्यंग्य में भांड एवं नकलियों का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। पंजाब के बुर्जुग ¼उच्च वर्ग½ विवाह, शादी, खुशी एवं त्योहार के अवसर पर इन्हें बुलाना बड़ा मान–प्रतिष्ठा वाला कार्य समझते थे। भांडों एवं नकलियों ने अपना यह पिता–वंशी मूल कार्य छोड़कर गायन, वादन एवं अन्य व्यवसायों को धारण कर लिया है। पंजाब में निम्म घनौर के मीरासी प्रसिद्ध नकलिये हुए हैं।

उपरोक्त तथ्यों के प्रकाश में यह कहा जा सकता है कि मीरासी, भांड, डूम एवं नकलिए, इन सब का मूल समान है। यह लोगों का मनोरंजन करने का ही कार्य करते आए हैं और निरंतर कर रहे हैं। इनके

समाज में व्यवसाय के आधार पर यह निम्न व उच्च श्रेणी में आते हैं।

- **भट्ट**

भट्ट योद्धायों, शूरवीरों का गुण–गान करने वाले थे। इनका प्रमुख कार्य राजा–महाराजा की वंशावली गा कर उनका गुण–गान करना था। ''भट्टों की लिपि को भट्टाखरी कहा जाता है, जिसमें लगें–मात्राएं नहीं होती। इसी बोली से यह कुर्सीनामा बनाते हैं।[20]

यह इनका पिता–वंशी पेशा था। यह ब्राãणों की सब से नीची जाति से सम्बन्धित हैं परन्तु इनकी उच्च विद्वता, राज–काज की सूझ–बूझ, साहित्य सृजन की कला इन्हें उच्च श्रेणी में शामिल करती है। इन का कार्य राजाओं–महाराजाओं की वाह–वाह को प्राप्त करना भी रहता है। श्री गुरू ग्रंथ साहिब में 11 भट्टों की वाणी को सम्मलित किया गया है। भाई कान्ह् सिंह नाभा ने भट्ट को इस तरह दृष्टिगोचर किया हैः

''लोगों के मंगलमयी समय पर यश गायन कर के दान लेने वाला, राजा की वंशावली व कुछ प्रशंसा कर के गुजारा करने वाला, विद्वान एवं वीर बहादुर।[21]

''भट्टों के कई तरह के कुल नाम पाए जाते हैंः राए भट्ट, राजा भट्ट, यग भट्ट, ब्रãा भट्ट।[22] इन्हें विभिन्न नामों से भी पुकारा जाता है जैसे, ''पूर्व में 'बही वंचा', उत्तरी भाग के लोग 'जागा' मारवाड़ के राए एवं कापड़ी कहते हैं।[23]

हिन्दू भट्टों के अतिरिक्त मुसलमान भट्टों के बारे में भी प्रमाण मिलते हैं। ''ये हिंदुओं के विपरीत बहुत कम हैं। इन्हें निम्नलिखित भागों में विभाजित किया गया हैः

¼क½ (i) चुराल ¼ख½ कपराल
(ii) पंज
(iii) सम्मित
(iv) गुदराल

¼क½ श्रेणी अन्य वगो± से विवाह रचा लेती थी किन्तु कपराल श्रेणी में ऐसी कोई धारणा प्रचलन में नहीं थी। यह वंशावली की स्वर रचना बनाकर उसे गायन करके सुनाते थे।[24]

- **चारण**

चारण राजपुताने की जाति है, जो भट्टों के तुल है। ''वंश की कीर्ती गाने वाला भट्ट बंदीजन ''जिस को जस बंद पढ़ै सम चारण'' संगीत के अनुसार नृत्य के समय घू¡घरू बजाने वाला एवं हंसी के वचन कहने वाला 'चारण' है।[25] इनका मुख्य पेशा गायन माना गया है। ''चारण काचली एवं मारू दो जातियों में विभाजित हैं।[26] वेदों एवं पुराणों में भट्टों के अतिरिक्त चारण जाति का ही उल्लेख मिलता है, जिन्हें राजस्थान की प्राचीन जाति कहा गया है। यह राजाओं की वंशावलियां एवं उन की महिमा गाया करते थे। ''चारण भट्टों तुल इस पक्ष से विभिन्न थे कि इन्होंने अपने लाग निश्चित किए हुए थे। जब कि भट्टों में ऐसी परम्परा देखने को नहीं मिलती।[27] इन्हें हास्य व्यंग्य करने वाले बंदीजन भी माना जाता है। चारणों के बारे में यह कहा जाता हैः

''ब्राह्मण के मुख की कविता
कुछ भाट्ट ली कुछ चारण लिनि।''[28]

- **ढाडी**

ढाडी को महान कोष में, ''ढड बजाकर योद्धाओं की वारें गाने वाला भाव यश गाने वाला कहा गया है।[29] इस तरह ज्ञात होता है कि ढड वाद्य के साथ गायन करने हेतु ही इन्हें ढाडी कहा जाता है। ''कबीलों की एक दूसरे से अधिक मजबूत एवं बलवान दिखने की भावना में से वीर रस काव्य उत्पन्न हुआ। कबीलों के आपसी युद्धों की वारता उस कबीले के गायक गा कर सुनाया करते थे। ऐसी प्रचलित परंपरा में गायकी की पेशकारी करने वाले गायकों की एक विशेष श्रेणी का जन्म हुआ, जिन्हें बाद में ढाडी कहा गया।[30] गुरू नानक देव जी ने भी गुरबाणी में ढाडी ''ाब्द का प्रयोग किया है और अपने आप को परमात्मा का ढाडी कहा है:

''खेसमैं के दरबार ढाडी वसिया
सचा खसम कलाणि कमल विगसिया''[31]

ढाडी मुसलमानों की श्रेणी में आते हैं। इनका मुख्य कार्य दरबारों में अपने पूर्वजों की बहादुरी के किस्से सुनाना व युद्ध में योद्धाओं के बारे में एवं वीर रस कविता सुना कर उन्हें प्रोत्साहित करना है। वर्तमान में ढाडी गायकी के साथ प्रयुक्त होने वाले साज़ ढड एवं सारंगी हैं। ढाडी परंपरा के इतिहास को दो भागों में रखा गया है:

(i) धार्मिक वारें या किस्सा सुनाने वाले ढाडी। इनके द्वारा सिक्ख धर्म के इतिहास को उजागर करने वाली रचनाओं को गायन किया जाता है।

(ii) दूसरी श्रेणी सामाजिक उत्सवों, त्योहारों एवं अखाड़ा गायकी का श्रृँगार बनती है। इसमें महान योद्धाओं की बहादुरी के किस्से, प्रेम–गाथाएं आदि का ढाडी गायन के विषय के रूप में चयन किया जाता है।

- **भराई**

भराई पंजाबी लोक संगीत परम्परा में अपनी एक विशेष पहचान बनाए हुए हैं। ये मुसलमान एवं हिन्दु दोनों जनजातियों में पाए जाते हैं। ''भराई कोई जाति नहीं है बल्कि यह एक व्यवसायिक मुखी या आध्यात्मिक बंधु भाव से बंधा एक समूह है, जिस से विभिन्न जाति के लोग सम्बन्ध रखते हैं: डोगर, हावड़ी, डूम, रावत, राजपूत, मोची, गुज्जर एवं बढ़ई ¼तरखान½ शामिल हैं, पर जाट इनमें शामिल नहीं है। हालांकि यह मुस्लिम धर्म से सम्बन्धित है, परन्तु उनके विवाह हिंदू रीति–रिवाजों के अनुसार होते हैं।[32] समाज में इनका काम अलग–अलग साज़ एवं ढोल बजाना था अथवा इन कलाकारों को ढोली के नाम से सम्बोधित किया जाता था। यह समाज में उच्च दृष्टि से दिखने वाला समूह है।

- **कथक**

''कथा कहे सो कथक–कथा कहने वालों को कथक कहा जाता था। ये घूम कर गाने वाले कलाकार एवं कथा–वाचक होते थे, जो एक जगह से दूसरी जगह पर जा कर प्यार एवं बहादुरी के गाथा–गीत गाते थे।[33] ये भी लोगों का मनोरंजन गा कर किया करते थे। इनका स्थान अन्य कई निम्न जातियों से उच्च रहा है। एच.ए. रोज़, निवेदिता सिंह और अन्य कई विद्वान कथक नृत्य को इसी वर्ग–विशेष से उपजा मानते हैं।

- **मुतरिब**

मुतरिब भी संगीतकार हुए हैं। इन्हें मीरासियों में से ही माना गया है। डूम अथवा मीरासियों में से ये

उच्च श्रेणी के कलाकार माने जाते थे। ''वह विवाह एवं त्योहारों पर गाते थे और हसन, हुसैन एवं अली के कार–विहार का विवरण रखते हैं।[34]

उपरोक्त वर्ग एवं जातियां उन वगो± के अंतर्गत आती हैं, जिनका काम पिता–वंशी था। कई वर्ग या जातियां ऐसी भी हैं, जिनके इतिहास में तो संगीत नहीं रहा मगर बाद में उन्होंने संगीत को व्यवसाय या पेशे के रूप में अपनाकर पंजाबी संगीत परम्परा को अमीर बनाया। ऐसे वर्ग निम्नलिखित हैं:

- **बाज़ीगर**

भारत के विभिन्न प्रदेशों में बाज़ीगर वर्ग भारी मात्रा में देखने को मिलता है। कान्ह् सिंह नाभा बाज़ीगर को ''खेल करने वाला; नट, जादूगर[35] कहते हैं। बाज़ी का अर्थ है ''खेलः ''बाज़ी खेल गए बाज़ीगर'' ¼मारू सोलहे मः 1½।[36] इस तरह बाज़ीगर बाज़ी खेलने वाले कलाकार या प्रदर्शनकार को कहते हैं।

इनका सम्बन्ध राजपूत हिंदुओं से जोड़ा जाता है। बाज़ीगर लोगों का मनोरंजन करने वाला वर्ग है। एच.ए. रोज़ ''बाज़ीगरों को मुसलमान एवं नट को हिंदू बताते हैं। बाज़ीगरों में स्त्री, मर्द दोनों ही प्रदर्शन करते हैं पर नटों में अकेले मर्द ही भागीदार बनते हैं।[37]

उपर्युक्त तथ्यों से ज्ञात होता है कि बाज़ीगरों की पृष्ठभूमि चाहे कुछ भी हो पर यह पंजाब का ऐसा वर्ग है, जो खेलों के माध्यम से और करतबों की प्रदर्शनी कर लोगों का मनोरंजन करता रहा है। धीरे–धीरे अपने करतब दिखाने की कला को इन्होंने संगीत के साथ जोड़ लिया, जिसके फलस्वरूप यह करतब दिखाने के लिए उत्साहित होने हेतु ढोल, नगाड़ा आदि संगीत वाद्यों का प्रयोग करने लगे और वादन के साथ–साथ गायन एवं नृत्य को भी अपनी प्रदर्शनी के भागों में सम्मिलित कर लिया। आज पंजाब में संगीत के क्षेत्र में बाज़ीगर वर्ग ने बहुत नामवर कलाकार पैदा किए हैं, जिनमें वडाली बंधू, सोनी राम लालका, संत राम खीवा, गामा राम सुनामी, जगत राम लालका, लक्खी वणजारा, लखविंदर वडाली आदि गायक शामिल हैं। गायन के इलावा इस वर्ग के लोगों ने संगीत वाद्यों एवं लोक नृत्य को भी प्रदर्शित करके संभाला है। स्त्रियों ने सम्मी, झूमर, गिद्धा और मर्दों ने सियालकोटी भ¡गड़ा और लुड्डी आदि लोक नृत्यों से लोगों का मनोरंजन किया है।

- **रविदासिए**

इन्हें पुरातन समय में चमार कहा जाता था। भक्त रविदास एक अनुभवी एवं ज्ञानवान व्यक्ति थे। ''वह चमार जाति से थे और अपनी जाति पर उन्हें गर्व था।[38] इनकी वाणी श्री गुरू ग्रंथ साहिब में 16 रागों में दर्ज है। आप ने अपनी पहचान बताते हुए लिखा है:

''मेरी जात कमीनी पाति कमीनी ओछा जनम हमारा।।
तुम सरनागति राजा राम चंद कहि रविदास चमारा।[39]

इस तरह रविदास अपने आप को चमार बताते हैं। भक्त रविदास के बाद इस जाति के लोगों को रविदासिए कहा जाने लगा। स्व. अमर सिंह चमकीला, कलेर कंठ इत्यादि गायक इसी वर्ग में से हुए हैं।

- **वाल्मीकि**

महांऋषि वाल्मीकि के नाम से ही इस वर्ग का नाम वाल्मीकि पड़ा। ऋषि वाल्मीकि ने रामायण की रचना की थी। इस वर्ग का भी संगीत को महत्वपूर्ण योगदान रहा है। यह माना जाता है कि ''गुग्गा ज़ाहर पीर द्वारा इन्हें बख़शिश प्राप्त है। यह गुग्गा गायन करते हैं, जिसे 'पैड़ी' कहा जाता है और गायक को 'सव्इये' कहा जाता है। सव्इये गाने के कारण ही इन्हें सव्इये कहा जाने लगा।[40] स्व. साबर कोटी, उ. बी.

एस. नारंग, लहम्बर हुसैनपुरी, अमनिन्दर बॉबी इत्यादि इस वर्ग के प्रमुख कलाकार हैं।

उपर्युक्त विचारधारा को ध्यानपूर्वक समझने से कई तथ्य सामने आते हैं कि ये संगीत से सम्बंधित सभी वर्ग, जिन्होंने संगीत को अपने सीने से लगाकर तथा संभाल कर रखा है, सदैव ही गरीब तथा निम्न स्तर पर रहे। देखने पर अनुभव होता है कि आज` पंजाबी संगीत का जो तिनका मात्र भी शुद्ध रूप हमारे समक्ष है, वो इन निम्न एवं हाशीयाकृत जातियों के कारण ही है।

हमारा भारतीय समाज एक ऐसे ढाँचे में बंधा हुआ है, जिसमें उच्च वर्ग की श्रेणी निम्न वर्ग पर आदेश थोपती नज़र आती है। यह एक तरफ़ उनकी आर्थिक स्थिति के प्रति चिंता प्रकट करती है और वहीं दूसरी तरफ़ उन्हें निम्न स्तर पर रहने के लिए विवश भी करती है। यह सारी प्रणाली राजनीति से इस कदर बंधी हुई है जिसकी मार हमेशा निम्न वर्ग या निम्न जातियों को सहनी पड़ी है। यह कला जीवी वर्ग अपने आश्रयदाताओं का मनोरंजन भी करते रहे हैं परन्तु उनसे प्राप्त राशि से इनका गुज़ारा भी नहीं होता था। जीवन की आवश्यक वस्तुओं की कमी रखने वाली कला से सम्बन्धित यह जातियां हमेशा वही पेशा करती आई हैं, जो उच्च वर्गों के साधन सम्पन्न व्यक्तियों के दिल को अच्छा लगा है। जागीरदारी प्रबंध ने हमेशा इनको अपने मोहताज बना कर दोहरे अर्थ का प्रतिमान देकर अपने नीचे लगाकर रखा है।

जैसे एक चमार को पशुओं की चमड़ी उतारने का काम करने हेतु उसे कर्मशील कह कर सराहा जाता है, वहीं उसकी इस बात को छोटा कह कर उसकी निंदा भी की जाती है। उसी प्रकार मीरासियों को जहा¡ एक तरफ़ अपनी विरासत को संभालने और संगीत की समझ रखने के लिए सम्मानित किया जाता है, वहीं दूसरी ओर मीरासियों का व्यवसाय संगीत होने के कारण पंजाब में इसे 'कंजरपुणा' भी करार दिया जाता रहा है। यहां हमारे समाज के दो तरह के प्रतिमान नज़र आते हैं।

उपुर्यक्त सभी वर्गों की संगीत को महÙवपूर्ण देन रही है, परंतु मीरासी वर्ग शुरूआत से वर्तमान तक संगीत से निरंतर जुड़ा रहा है। अगर हम इनके संगीत के प्रति योगदान को एक पल के लिए भुला दें तो हमें पीछे कुछ भी नहीं दिखेगा। इसलिए पंजाब की संगीत परम्परा में इनके बहुमूल्य योगदान को हमेशा याद किया जाता है परन्तु आधुनिक युग में मण्डी के दबाव नीचे आया यह वर्ग संगीत से अपनी आजीविका न कमा पाने हेतु आज अपनी ही सांगीतिक विरासत को छोड़कर अन्य कामों को करने के लिए मजबूर हो गया है। वैश्वीकरण के इस दौर में मीरासी वर्ग के उच्चता की कला रखते कई कलाकार गुमनामी एवं अंधकार का जीवन बसर कर रहे हैं, वहीं दूसरी ओर विरासती संगीत से बिल्कुल सम्बन्ध न रखने वाले कुछ वर्ग संगीत क्षेत्र में आकर अपनी किस्मत अज़मा रहे हैं तथा पैसे, मीडिया व वीडियोग्राफ़ी के बल पर यू–ट्यूब इत्यादि पर छा रहे हैं। ज़रूरत है कि शोध–पत्र में अंकित सभी वर्गों को प्रोत्साहन, संरक्षण तथा आश्रय प्रदान कर इनकी पीढ़ी–दर–पीढ़ी चली आ रही सांगीतिक धरोहर को संभाला जाए। इसलिए सरकार तथा अन्य संस्थाओं द्वारा इन्हें वापिस अपनी सांगीतिक धरोहर को संभालने के लिए प्रोत्साहित कर सहायता प्रदान करना आवश्यक है।

संदर्भ

1. हिमायूं कबीर, *भारती विरसा* ¼पंजाबी पुस्तक½, अनु. शिव कुमार बटालवी, यूनिवर्सिटी टैकस्ट–बुक बोर्ड, पंजाब, 1981, पृष्ठ 2.
2. मुहम्मद लतीफ़, *पंजाब दा इतिहास* ¼पंजाबी पुस्तक½, लाहौर बुक शॉप, लुधियाना, 1993, पृष्ठ 51.
3. ढिल्लों, हरदित्त सिंह, *पूर्व अते पश्चिम* ¼पंजाबी पुस्तक½, लाहौर बुक शॉप, लाहौर, 1940, पृष्ठ 188.
4. गुरिए, जी.एस. *भारत विच जाति अते नसल* ¼पंजाबी पुस्तक½, अनु. एन.एस. सोढी, पंजाबी यूनिवर्सिटी,

पटियाला, 1977, पृष्ठ 29.

5. रोज़, एच.ए. *ए गलौसरी ऑफ द टªईबज़ एण्ड कास्टस आफ़ द पंजाब एण्ड नॉर्थ–ईस्ट फ़रंटीयर प्रोविंस*, भाग–तीसरा, 1990, पृष्ठ 105.
6. नाभा, भाई कान्ह् सिंह, *गुरशब्द रत्नाकर महान कोष* ¼पंजाबी कोष½, भाषा विभाग, पंजाब, 1981, पृष्ठ 974.
7. अशोक, शमशेर सिंह, *मीरासियाँ दा पिछोकड़ अते भाई मरदाना* ¼पंजाबी पुस्तक½, गुरु नानक अध्ययन विभाग, गुरु नानक देव यूनिवर्सिटी, अमृतसर, 1973, पृष्ठ 7.
8. धौला, जगराज, *मरदाने के : सामाजिक, सभ्याचारक पहचान* ¼पंजाबी पुस्तक½, विश्व भारती प्रकाशन, बरनाला, 2012, पृष्ठ 9.
9. वही, पृष्ठ 14.
10. गुरिए, जी.एस. *भारत विच जाति अते नसल* ¼पंजाबी पुस्तक½, अनु. एन.एस. सोढी, पंजाबी यूनिवर्सिटी, पटियाला, 1977, पृष्ठ 29.
11. नाभा, भाई कान्ह् सिंह, *गुरशब्द रत्नाकर महान कोष* ¼पंजाबी कोष½, भाषा विभाग, पंजाब, 1981, पृष्ठ 561.
12. गुरिए, जी.एस. *भारत विच जाति अते नसल* ¼पंजाबी पुस्तक½, अनु. एन.एस. सोढी, पंजाबी यूनिवर्सिटी, पटियाला, 1977, पृष्ठ 295.
13. रोज़, एच.ए. *ए गलौसरी ऑफ द टªईबज़ एण्ड कास्टस आफ़ द पंजाब एण्ड नॉर्थ–ईस्ट फ़रंटीयर प्रोविंस*, भाग–दूसरा, 1990, पृष्ठ 249.
14. वही, पृष्ठ 114.
15. दरिया ¼डा.½, *पंजाबी लोकधारा अधियैन विभिन्न पासार* ¼पंजाबी पुस्तक½, रवि साहित प्रकाशन, अमृतसर, 2017, पृष्ठ 83.
16. वही, पृष्ठ 83.
17. नाभा, भाई कान्ह् सिंह, *गुरशब्द रत्नाकर महान कोष* ¼पंजाबी कोष½, भाषा विभाग, पंजाब, 1981, पृष्ठ 677.
18. थूही, हरदयाल, *पंजाब दी लोक कलाः नकलां ते नकलिए* ¼पंजाबी पुस्तक½, पंजाब संगीत नाटक अकादमी, चण्डीगढ़, 2017, पृष्ठ 56.
19. वही, पृष्ठ 56.
20. सोहल, हरिंदर कौर ¼डा.½, *पंजाबी गायकीः विभिन्न पासार* ¼पंजाबी पुस्तक½, नानक सिंह पुस्तक माला, अमृत्सर, 2012, पृष्ठ 80.
21. नाभा, भाई कान्ह् सिंह, *गुरशब्द रत्नाकर महान कोष* ¼पंजाबी कोष½, भाषा विभाग, पंजाब, 1981, पृष्ठ 903–904.
22. ज्ञानी गुरदित सिंह, *भट्ट अते उहनां दी रचना* ¼पंजाबी पुस्तक½, पंजाबी साहित अकादमी, लुधियाना, 1961, पृष्ठ 54.
23. वही, पृष्ठ 54.
24. रोज़, एच.ए. *ए गलौसरी ऑफ द टªईबज़ एण्ड कास्टस आफ़ द पंजाब एण्ड नॉर्थ–ईस्ट फ़रंटीयर प्रोविंस*, भाग–तीसरा, 1990, पृष्ठ 99.

25. नाभा, भाई कान्ह् सिंह, *गुरशब्द रत्नाकर महान कोष* ¼पंजाबी कोष½, भाषा विभाग, पंजाब, 1981, पृष्ठ 463.
26. ज्ञानी गुरदित सिंह, *भट्ट अते उहनां दी रचना* ¼पंजाबी पुस्तक½, पंजाबी साहित अकादमी, लुधियाना, 1961, पृष्ठ 50.
27. सोहल, हरिंदर कौर ¼डा.½, *पंजाबी गायकीः विभिन्न पासार* ¼पंजाबी पुस्तक½, नानक सिंह पुस्तक माला, अमृत्सर, 2012, पृष्ठ 84.
28. वही, पृष्ठ 84.
29. नाभा, भाई कान्ह् सिंह, *गुरशब्द रत्नाकर महान कोष* ¼पंजाबी कोष½, भाषा विभाग, पंजाब, 1981, पृष्ठ 565.
30. सोहल, हरिंदर कौर ¼डा.½, *पंजाबी गायकीः विभिन्न पासार* ¼पंजाबी पुस्तक½, नानक सिंह पुस्तक माला, अमृत्सर, 2012, पृष्ठ 51.
31. *श्री गुरू ग्रंथ साहिब*, पृष्ठ 148.
32. रोज़, एच.ए. *ए गलौसरी ऑफ दि ट्राईबज़ एण्ड कास्टस आफ़ द पंजाब एण्ड नॉर्थ–ईस्ट फ़रंटीयर प्रोविंस*, भाग–तीसरा, 1990, पृष्ठ 86.
33. निवेदिता सिंह ¼डा.½, *ट्रैडिशन ऑफ़ हिन्दुस्तानी म्यूज़िक*, कनि’क पब्लिशर्ज़, नई दिल्ली, 2017, पृष्ठ 145.
34. वही, पृष्ठ 149.
35. नाभा, भाई कान्ह् सिंह, *गुरशब्द रत्नाकर महान कोष* ¼पंजाबी कोष½, भाषा विभाग, पंजाब, 1981, पृष्ठ 851.
36. वही, पृष्ठ 851.
37. रोज़, एच.ए. *ए गलौसरी ऑफ द ट्राईबज़ एण्ड कास्टस ऑफ़ द पंजाब एण्ड नॉर्थ–ईस्ट फ़रंटीयर प्रोविंस*, भाग–दूसरा, 1990, पृष्ठ 79.
38. गुमटाला, चरनजीत सिंह, *भगत रविदास* ¼पंजाबी पुस्तक½, पंजाबी राइटर्ज़ कॉप्रेटिव सोसाइटी लिमिटिड, लुधियाना, 1995, पृष्ठ 09.
39. *श्री गुरू ग्रंथ साहिब*, पृष्ठ 659.
40. दिनांक 02.05.2019 को मुकेश अनारिया, ¼'आदि धर्म अनारिया समाज' संस्था के संस्थापक½, चण्डीगढ़ से हुए फ़ोन वार्तालाप पर आधारित।